स्वच्छ भारत के लिए अपशिष्ट प्रबंधन की नई तकनीक और प्रौद्योगिकी

–निमिष कपूर

आज कचरे का प्रबंधन, पुनः उपयोग और पुनर्निर्माण समय की मांग है। देश के वैज्ञानिक संस्थानों में नई तकनीकों एवं प्रौद्योगिकी के सहारे कचरे से निर्माण किया जा रहा है जिससे न केवल कचरे से निजात मिल रही है बल्कि हम वेस्ट टू वेल्थ यानी कचरे से सम्पन्नता की ओर टिकाऊ कदम बढ़ा रहे हैं। इस आलेख में हम कचरा प्रबंधन के लिए किए जा रहे नीतिगत, वैज्ञानिक व तकनीकी प्रयासों को जानेंगे जो स्वच्छ भारत के सपने को साकार करने में मदद कर रहे हैं।

हमारे गांव और शहरों में जगह–जगह लगे कचरे के ढेर और उनमें पनपते रोग आज गंभीर खतरा बन चुके हैं। घर से कार्यालय या कॉलेज जाते समय और ट्रेन से किसी रेलवे स्टेशन पहुंचने से पूर्व नजर आते कचरे के पहाड़ हमारा स्वागत करते हैं। कचरे में स्थानीय मवेशी प्लास्टिक की पन्नियों को अपना भोजन बनाते हैं तो कहीं सड़े–गले कचरे के साथ इलेक्ट्रॉनिक कचरा भी इनके पेट में चला जाता है। ऐसे में आज कचरे का प्रबंधन, पुनः उपयोग और पुनर्निर्माण समय की मांग है। देश के वैज्ञानिक संस्थानों में नई तकनीकों एवं प्रौद्योगिकी के सहारे कचरे से निर्माण किया जा रहा है जिससे न केवल कचरे से निजात मिल रही है बल्कि हम वेस्ट टू वेल्थ यानी कचरे से सम्पन्नता की ओर टिकाऊ कदम बढ़ा रहे हैं।

एक अनुमान के अनुसार भारत के 7935 शहरी क्षेत्रों में रहने वाले 37 करोड़ 70 लाख निवासियों के कारण प्रतिदिन 1,70,000 टन ठोस अपशिष्ट पैदा होता है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि 2030 तक जब शहरों में 59 करोड़ नागरिक हो जाएंगे और आबादी बढ़ने से शहरों की सीमाएं समाप्त हो जाएंगी तो प्राकृतिक शहरी अपशिष्ट का प्रबंधन करना मुश्किल होगा। इस आलेख में हम कचरा प्रबंधन के लिए किए जा रहे नीतिगत, वैज्ञानिक व तकनीकी प्रयासों को जानेंगे जो स्वच्छ भारत के सपने को साकार करने में मदद कर रहे हैं।

अपशिष्ट से ऊर्जा उत्पादन तकनीकों के लिए प्रोत्साहन

स्मार्ट सिटी व स्वच्छ भारत परियोजना के अंतर्गत हाल ही में नीति आयोग ने नगरपालिका ठोस अपशिष्ट की विशाल समस्या से निपटने के लिए एक त्रिवर्षीय एजेंडा तैयार किया है, जिसमें सात वर्ष की रणनीति एवं पंद्रह वर्ष की दूरदर्शिता अवधि तय की गई है। इसके तहत महानगरों में अपशिष्ट पदार्थ से ऊर्जा तैयार करने और उपनगरों व अर्धशहरी इलाकों में अपशिष्ट से खाद निर्माण को प्रस्तावित किया गया है। नीति आयोग द्वारा वेस्ट टू एनर्जी कार्पोरेशन स्थापित करने का सुझाव दिया गया है। यह निगम 2019 तक 100 स्मार्ट शहरों में अपशिष्ट से ऊर्जा निर्माण के लिए संयंत्रों को स्थापित करेगा।

स्वच्छ भारत अभियान पर गठित मुख्यमंत्रियों के उपसमूह ने वर्ष 2015 की रिपोर्ट में अपशिष्ट से ऊर्जा निर्माण संयंत्रों की सिफारिश की थी। यदि इस दिशा में तकनीकी विकास होता है तो 2018 तक 330 मेगावॉट और 2019 तक 511 मेगावाट बिजली उत्पन्न होने की संभावना है। फिलहाल देश में अपशिष्ट से ऊर्जा तैयार करने पर वैज्ञानिकों व नीति–निर्धारकों की मिली–जुली प्रतिक्रिया है। अपशिष्ट की समस्या इतनी गहरी है कि उसके दहन से जहरीली गैसों के फैलने की आशंका है क्योंकि अपशिष्ट में सड़ा–गला भोजन, पन्नियां, प्लास्टिक व धातु का कचरा, इलेक्ट्रॉनिक कचरा सभी कुछ शामिल होता है, जिसके संयंत्र में दहन करने पर कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून द्वारा विकसित बेंच रिएक्टर संयंत्र द्वारा प्लास्टिक कचरे से ईंधन निर्माण

आज अपशिष्ट से ऊर्जा उत्पादन की कई तकनीकों का विकास किया गया है जो पहले से अधिक स्वच्छ और अधिक किफायती ऊर्जा उत्पादन के लिए अपशिष्ट का प्रसंस्करण करती हैं, जिसमें शामिल हैं लैंड–फिल गैस अवशोषण, थर्मल पाइरोलिसिस और प्लाज़्मा गैसीकरण। पुराने अपशिष्ट भट्ठी संयंत्र, उच्च–स्तरीय प्रदूषकों का उत्सर्जन करते थे, जबकि आज थर्मल पाइरोलिसिस और प्लाज़्मा गैसीकरण जैसी नई प्रौद्योगिकियों ने दहन से प्रदूषण की चिंता को काफी कम कर दिया है। नीति आयोग ने थर्मल पाइरोलिसिस और प्लाज़्मा गैसीकरण प्रौद्योगिकियों के लाभ व लागत के आनुपातिक मूल्यांकन भी किए हैं। ये अधिक बजट वाली तकनीकें हैं जिन पर राज्यों का समर्थन आवश्यक है। अपशिष्ट से कम्पोस्ट खाद और बायोगैस उत्पन्न करने के लिए भूमि की आवश्यकता होगी, जिसे राज्यों की मदद से ही हासिल किया जा सकता है। अपशिष्ट से ऊर्जा निर्माण में रोजगार सृजन की भी प्रबल संभावनाएं हैं, जिसमें राष्ट्रीय कौशल विकास निगम महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

आज देश में जैविक अपशिष्ट से ऊर्जा या ईंधन निर्माण का कार्य गति पकड़ रहा है। चावल निकालने के बाद बची धान की भूसी पहले केवल जलावन के काम आती थी, लेकिन अब मदुरै, तिरुनलवेली आदि में धान की भूसी से राइस ब्रान ऑयल यानी खाना पकाने में काम आने वाला कीमती तेल बन रहा है। इसी तरह गेहूं का भूसा व गन्ने का कचरा जानवरों को चारे में खिलाते थे, लेकिन अब उत्तराखंड के काशीपुर में उससे उम्दा जैव ईंधन 2जी एथनॉल व लिग्निन बन रहा है। कृषि अवशेष को बेकार समझ कर किसान उसे खेतों में जला देते हैं, लेकिन उसी कचरे से अब बायोमास गैसीफिकेशन के पावर प्लांट चल रहे हैं। उनमें बिजली बन रही है, जो राजस्थान, पंजाब और बिहार राज्यों के हजारों गांवों में घरों को रोशन कर रही है।

प्लास्टिक का अपशिष्ट प्रबंधन एक चुनौती

प्लास्टिक व पॉलिथीन आज अपशिष्ट प्रबंधन में एक बड़ी समस्या है। प्लास्टिक व पॉलिथीन को किसी भी प्रक्रिया से नष्ट नहीं किया जा सकता और जानवर कचरे में पड़े भोजन के साथ पन्नियों को खाकर अकाल मृत्यु का शिकार होते हैं। बड़ी संख्या में मवेशियों की मौतें पॉलीथीन के कचरे को खाकर होती हैं। एक रिपोर्ट के मुताबिक देश में हर साल 30–40 लाख टन प्लास्टिक का उत्पादन किया जाता है। हर साल करीब साढ़े सात लाख टन पॉलिथीन कचरे की रिसाइक्लिंग की जाती है और बाकी पॉलिथीन नदी, नाले और मिट्टी में जमा रहते हैं और संकट का सबब बनते हैं। प्लास्टिक के थैलों के इस्तेमाल से होने वाली समस्याएं कचरा प्रबंधन प्रणालियों की खामियों की वजह से पैदा हुई हैं। प्लास्टिक

प्लास्टिक का कचरा बनता है मवेशियों का निवाला

का यह कचरा नालियों और सीवेज व्यवस्था को ठप्प कर देता है। नदियों में भी इनकी वजह से बहाव पर असर पड़ता है और पानी के दूषित होने से मछलियों की मौत तक हो जाती है। रिसाइकिल किए गए या रंगीन प्लास्टिक थैलों में ऐसे रसायन होते हैं जो जमीन में पहुंच जाते हैं और इससे मिट्टी एवं भूजल विषैला बन सकता है। जिन उद्योगों में पर्यावरण की दृष्टि से बेहतर तकनीक वाली रिसाइक्लिंग इकाइयां नहीं लगी होतीं उनमें रिसाइक्लिंग के दौरान पैदा होने वाले जहरीले धुएं से वायु प्रदूषण फैलता है। प्लास्टिक एक ऐसा पदार्थ है जो सहज रूप से मिट्टी में घुलमिल नहीं सकता। इसे अगर मिट्टी में छोड़ दिया जाए तो यह भूजल की रिचार्जिंग को रोक सकता है। इसके अलावा प्लास्टिक उत्पादों के गुणों के सुधार के लिए और उनको मिट्टी से घुलनशील बनाने के इरादे से जो रासायनिक पदार्थ और रंग आदि उनमें आमतौर पर मिलाए जाते हैं, वे भी अमूमन स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

प्लास्टिक के थैले अनेक हानिकारक रंगों, रंजक और अन्य तमाम प्रकार के अकार्बनिक रसायनों को मिलाकर बनाए जाते हैं। रंग और रंजक एक प्रकार के औद्योगिक उत्पाद होते हैं जिनका इस्तेमाल प्लास्टिक थैलों को चमकीला रंग देने के लिए किया जाता है। इनमें से कुछ रसायन कैंसर को जन्म दे सकते हैं और कुछ खाद्य पदार्थों को विषैला बनाने में सक्षम होते हैं। रंजक पदार्थों में कैडमियम जैसी धातुएं स्वास्थ्य के लिए बेहद नुकसानदायक हैं। थोड़ी–थोड़ी मात्रा में कैडमियम के इस्तेमाल से उल्टियां हो सकती हैं और दिल का आकार बढ़ सकता है। लम्बे समय तक जस्ता के इस्तेमाल से मस्तिष्क के ऊतकों का क्षरण होने लगता है। प्लास्टिक के कुछ घटकों जैसे बेंजीन और विनाएल क्लोराइड को कैंसर का कारण जाना जाता है और तरल हाइड्रोकार्बन पृथ्वी और हवा को दूषित करते हैं। प्लास्टिक के उत्पादन के दौरान कुछ कृत्रिम रसायन जैसे एथिलीन ऑक्साइड, बेंजीन और जाइलींस उत्सर्जित होते हैं जो पारिस्थितिकी प्रणाली को नुकसान

पहुंचाते हैं। इसके अलावा तंत्रिका तंत्र और प्रतिरक्षा प्रणाली को भी नुकसान पहुंचाते हैं तथा रक्त और गुर्दों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। आज आप हर गली–चौराहे पर लोगों को पॉलिथीन में गर्म चाय और भोजन ले जाता देख सकते हैं जो विषाक्त हो जाता है। इतना ही नहीं प्लास्टिक की बोतलों में पैक मिनरल वॉटर भी ट्रकों में चल कर धूप की गर्मी में लगातार प्लास्टिक के संपर्क में रहकर विषाक्त हो सकता है, जिसके कई वैज्ञानिक अध्ययन हो चुके हैं। पॉलिएथिलीन, पॉलिविनाएल क्लोराइड, पॉलिस्टरीन बड़े पैमाने पर प्लास्टिक के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। सिंथेटिक पॉलिमर आसानी से जटिल आकार में ढल जाते हैं। ये उच्च रासायनिक प्रतिरोधक हैं और अधिक या कम लोचदार होते हैं। कुछ को फाइबर या पतली पारदर्शी फिल्मों में भी बदला जा सकता है। इन्हीं गुणों के कारण उन्हें कई लोकप्रिय, टिकाऊ या डिस्पोजेबल वस्तुओं और पैकेजिंग सामग्री बनाने के लिए उपयोग मे लाया जाता है। अत्यधिक आणविक आकार होने के कारण ही इन रसायनों की प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है और ये लंबे समय के लिए मिट्टी के वातावरण में अपने आप को बनाए रखते हैं।

जैव–अवकर्षण प्लास्टिक बनाने में सफलता

आज वैज्ञानिकों ने जैव–अवकर्षण प्लास्टिक बनाने में सफलता हासिल कर ली है जिन्हें जैविक अपघटन द्वारा खत्म किया जा सकता है या खाद एवं जैविक कचरे में तब्दील किया जा सकता है। प्लास्टिक का जैव–अवकर्षण, पर्यावरण में उपस्थित सूक्ष्मजीवों को सक्रिय कर संपन्न किया जाता है, जो प्लास्टिक झिल्लियों की आण्विक संरचना के उपापचय द्वारा एक खाद सदृश मिट्टी वाले अक्रिय पदार्थ का निर्माण करते हैं, और पर्यावरण के लिए कम हानिकारक होते हैं। जैव–अवकर्षण प्लास्टिक ऐसे पदार्थों से बने होते हैं, जिनके घटक नवीकरणीय कच्ची सामग्रियों, जैव–सक्रिय यौगिकों एवं किसी अतिरिक्त पदार्थ के मिश्रण वाले पेट्रोलियम–आधारित प्लास्टिक से निर्मित होते हैं। जैव–सक्रिय यौगिक के प्रयोग से यह सुनिश्चित होता है कि जब वे ताप तथा नमी के संपर्क में आते हैं तो प्लास्टिक अणुओं की संरचना को प्रसारित कर देते हैं और जैव–सक्रिय यौगिकों को प्लास्टिक के उपापचय तथा उदासीनीकरण के लिए प्रेरित कर देते हैं। जैव–अवकर्षण प्लास्टिक विशेष रूप से दो रूपों में निर्मित किए जाते हैं– पहले, इंजेक्शन मोल्डेड (ठोस, 3डी आकार) जो यूज एंड थ्रो वाली खाद्य सेवा वस्तुओं में होते हैं, तथा दूसरे झिल्ली (फिल्म), जो विशेषकर जैविक (ऑर्गेनिक) फल पैकेजिंग तथा पत्तियां और घास के कतरनों के लिए संग्रह करने वाले थैलों एवं अधसड़ी कृषि घास–फूसों में इस्तेमाल होते हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि प्रमाणित जैव–अवकर्षण प्लास्टिक की एक संभावित पर्यावरणीय हानि यह है कि उनमें फंसे कार्बन वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैस के रूप में मुक्त होते हैं। हालांकि प्राकृतिक पदार्थों से प्राप्त जैव–अवकर्षण प्लास्टिक, जैसे सब्जियों वाली फसलों से या जंतु उत्पाद से व्युत्पन्न प्लास्टिक अपनी वृद्धि के चरण में कार्बन–डाई–ऑक्साइड को अलग करते हैं, इस प्रकार जब वे अपघटित हो रहे होते हैं केवल तभी कार्बन–डाई–ऑक्साइड मुक्त करते हैं, इसलिए कार्बन–डाइ–ऑक्साइड उत्सर्जन में कोई परिणामी वृद्धि नहीं होती। जब वास्तविक जैव–अवकर्षण प्लास्टिक किसी अवायुजीवी (कचरा) वातावरण में अपघटित होता है तो अन्य ग्रीनहाउस गैस, मीथेन–मुक्त हो सकती हैं। इन विशेष कचरा–स्थलों वाले वातावरण से निर्मित मीथेन विशेष रूप से एकत्र किया जाता है और वातावरण में मुक्त होने से बचाने के लिए उन्हें जला दिया जाता है। हालांकि अभी जैव–अवकर्षण प्लास्टिक पर गहन विचार–विमर्श एवं शोध चल रहे हैं। जैव–अवकर्षण प्लास्टिक उम्मीद की किरण लेकर आई है।

प्लास्टिक के कचरे पेट्रोल–डीजल निर्माण की प्रौद्योगिकी

वैज्ञानिक प्लास्टिक और पॉलिथीन के कचरे से पेट्रोल, डीजल और खाना पकाने वाली एलपीजी गैस का निर्माण करने की तैयारी कर रहे हैं जो स्वच्छ भारत अभियान में एक महत्वपूर्ण कार्य होगा। भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून के वैज्ञानिक बेंच रिएक्टर संयंत्र द्वारा प्लास्टिक कचरे को ईंधन में तब्दील करने का सफल प्रयोग कर चुके हैं और अब इस प्रयोग को विस्तार देने की तैयारी की जा रही है। इस तकनीक का बहुत बड़ा फायदा देश में ईंधन की आपूर्ति में होगा और साथ ही प्लास्टिक के कचरे से भी निजात मिलेगी। इसकी कीमत वर्तमान में उपलब्ध पेट्रोलियम कि प्रदार्थों से बेहद कम होगी। वैज्ञानिकों का मानना है कि ये प्लांट नगरपालिका और नगर निगम जैसे संस्थान आसानी से लगा सकते हैं क्योंकि उनके कंधों पर शहर का प्लास्टिक और पॉलीथीन जैसा

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली द्वारा कचरा प्लास्टिक से विकसित टाइल्स व स्मार्ट शौचालय

कचरा साफ करने की जिम्मेदारी है जिसका इस्तेमाल वो इस रूप में कर सकते हैं। यह तकनीक प्लास्टिक के रिसाइक्लिंग से अधिक सुरक्षित है क्योंकि ईंधन बनाते समय किसी भी हानिकारक गैस का रिसाव नहीं होगा। यानी देश प्लास्टिक और पॉलीथीन क़े कभी न नष्ट होने वाले खतरे से बचेगा और इस तकनीक से प्राप्त डीजल पेट्रोलियम क्षेत्र में देश को आत्मनिर्भरता का एहसास भी कराएगा। वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रयोग में एक किलो पॉलीथीन से 700 मिलीलीटर पेट्रोल, डीजल या 500 मिलीलीटर घरेलू गैस बनायी जा सकती है। इस प्रयोग में फिलहाल प्रतिदिन 10 टन प्लास्टिक कचरे से डीजल के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है जो वाहनों एवं कारखानों की मशीनों को चलाने में काम आएगा।

कचरा प्लास्टिक से स्मार्ट टॉयलेट टाइल्स निर्माण की तकनीक

सीएसआईआर की राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला ने प्लास्टिक के कचरे से सस्ती और टिकाऊ टाइलों के निर्माण की प्रौद्योगिकी विकसित की है, जिसका उपयोग कम लागत के शौचालय के निर्माण में किया जा रहा है। इस तकनीक को स्मार्ट टॉयलेट मेड ऑफ बेस्ट प्लास्टिक बैग्स का नाम दिया गया है। इस कार्य के लिए राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला का एक विभाग कचरे से अलग किए गए प्लास्टिक के थैलों, पन्नियों और बोतलों को कबाड़ी से खरीदता है। इस प्लास्टिक कचरे का चूरा बनाकर उसे एक निश्चित तापमान तक गर्म किया जाता है और इसमें फ्लाई एश और कुछ रसायन मिलाए जाते हैं। इसके बाद इस मिश्रण को कम्प्रेशन मोल्डिंग तकनीक से टाइल निर्माण के सांचों में डाला जाता है। ये टाइल भी बाजार में बिकने वाली महंगी टाइलों की तरह आकर्षक होती हैं। इस तकनीक से बनी टाइलें बेहतर तकनीकी गुणवत्ता वाली, ताप व आग रोधी, जल पारगम्य और सूर्य की पराबैंगनी किरणों से सुरक्षित होती हैं। अनुसंधान कार्यों में इन टाइलों की तन्यशक्ति, ज्वलनशीलता, तापरोधी क्षमताएं, पर्यावरणीय स्थिरता, एसिड और क्षारों की प्रतिरोधकता का भी परीक्षण किया जाता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि स्मार्ट टॉयलेट्स मेड ऑफ बेस्ट प्लास्टिक बैग्स एक अति–आधुनिक शौचालय की तरह होते हैं जिन्हें इन वैज्ञानिक प्रयासों से कचरे के प्लास्टिक से कम कीमत पर बनाया गया है। इस शौचालय की लागत 15000 रुपये तक आती है और यदि इसको प्रकाशित करने के लिए सोलर पैनल लगाना चाहें तो इसकी लागत 21000 रुपये तक आती है। इस शौचालय में रोशनी के लिए इसकी भीतरी दीवारों में फ्लोरेसेंट पेंट लगाया जाता है।

प्लास्टिक के कचरे से सड़क निर्माण

आज देश के लगभग सभी राज्यों में प्लास्टिक के कचरे से सड़क बनाने का प्रयोग किया जा रहा है। हाल ही में केरल के कोझिकोड स्थित नेशनल ट्रांसपोर्टेशन प्लानिंग एंड रिसर्च सेंटर ने प्रायोगिक तौर पर वतकारा कस्बे में प्लास्टिक के कचरे से 400 मीटर सड़क तैयार की है। यह प्रयोग तमिलनाडु एवं कर्नाटक राज्यों में पहले ही किया जा चुका है, लेकिन केरल की पर्यावरणीय और मिट्टी की भिन्नता के कारण यह प्रयोग सफल नहीं हो सका था। इस पर शोधकर्ताओं ने दोबारा काम शुरू किया और माना जा रहा है कि अब यह प्रयोग सफल हो गया है। केरल में प्लास्टिक का कचरा बहुतायत में निकलता है, जिसके निपटान की पूरी व्यवस्था नहीं होने से यह पर्यावरण के लिए बेहद नुकसानदायक साबित हो रहा है। सड़क निर्माण में इस कचरे का उपयोग हो जाने से पर्यावरण संरक्षण की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया जा सकेगा और साथ ही सस्ती व टिकाऊ सड़क बनाना आसान हो जाएगा। प्लास्टिक के कचरे से सड़क बनाने पर 10 प्रतिशत तक डामर की बचत होगी। एक टन प्लास्टिक कचरे से साढ़े तीन मीटर चौड़ी एक किलोमीटर सड़क बनाई जा सकती है। इसमें खर्चा भी पारंपरिक डामर की सड़कों की तुलना में काफी कम आता है। इस प्रक्रिया में प्लास्टिक के टुकड़ों को पिघलाकर तापमान 160 से 170 डिग्री सेल्सियस के तापमान में गिट्टी के साथ मिलाया जाता है।

केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान की सलाह के बाद महाराष्ट्र सरकार ने सड़क निर्माण में डामर के साथ प्लास्टिक कचरे का उपयोग करने का फैसला लिया है। केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान ने सिफारिश की है कि डांबर के साथ प्लास्टिक कचरों के इस्तेमाल से बनने वाली सड़क बेहतर होगी और इससे सड़क निर्माण पर होने वाला खर्च भी घटेगा। सड़क निर्माण में प्लास्टिक कचरे के उपयोग का एक फायदा यह भी होगा कि इससे प्लास्टिक कचरे का निष्पादन होगा और प्लास्टिक की वजह से मिट्टी में होने वाले प्रदूषण को कम कर मृदा संरक्षण को बढ़ाया जा सकेगा। बिहार की राजधानी पटना में भी घरों से निकलने वाले प्लास्टिक कचरे का उपयोग अब सड़क बनाने में किया जाएगा। इसके लिए सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ प्लास्टिक इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी, हाजीपुर से तकनीकी मदद ली जाएगी। उत्तराखंड की राजधानी देहरादून में भी प्लास्टिक कचरे से सड़कों का निर्माण शुरू कर ही दिया गया है।

स्लो सेंड फिल्टर तकनीक से सीवेज ट्रीटमेंट

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एवं आई.आई.टी. रुड़की के संयुक्त प्रयासों द्वारा किए जा रहे शोध में वैज्ञानिकों ने स्लो सेंड फिल्टर नामक सस्ती, टिकाऊ व अधिक कारगर तकनीक विकसित की है। यह शोध सीवेज के गंदे पानी की सफाई से जुड़ी है जो इंसान द्वारा सीधे नदियों में डाला जाता है। विस्तार लेती शहरी आबादी व बढ़ते औद्योगीकरण के चलते सिंचाई सहित अन्य कार्यो के लिए पानी की जरूरत को पूरा करने के लिए सीवेज ट्रीटमेंट की जरूरत भी बढ़ गई है, इसके लिए भारत में अपनाई जा रही प्रणाली महंगी होने के साथ ही प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के मानकों के अनुसार पानी का शोधन नहीं कर पा रही है।

इस शोध से जुड़े वैज्ञानिकों के मुताबिक स्लो सेंड फिल्टर

तकनीक सीवेज के गहन ट्रीटमेंट के लिए तैयार की गई है। वर्तमान में इस्तेमाल की जा रही तकनीक से निष्कासित पानी में बीमारी फैलाने वाले बैक्टीरिया बड़ी संख्या में मौजूद रहते हैं। इनकी संख्या 100 मिलीलीटर में लगभग एक लाख होती है, जबकि यह मात्रा 100 मिलीलीटर में 1,000 से अधिक नहीं होनी चाहिए। स्लो सेंड फिल्टर तकनीक से शोधित पानी बैक्टीरिया को मानकों के अनुरूप ही साफ करता है। इस पद्धति की खासियत यह है कि यह बहुत कम खर्च में तैयार होने के बावजूद पुरानी पद्धति से कहीं अधिक कारगर है। इसमें न तो बिजली की खपत करनी पड़ती है और न ही महंगे उपकरणों की। इसके लिए आसानी से उपलब्ध रेत का ही उपयोग किया जाता है तथा यह बिना तकनीकी दक्षता वाले लोगों द्वारा भी संचालित की जा सकती है।

रूट ज़ोन ट्रीटमेंट यानी सरकंडे की झाड़ियों से पानी शुद्ध करने की तकनीक

भारतीय वन अनुसंधान संस्थान (एफआरआई), देहरादून द्वारा यमुना को प्रदूषण मुक्त करने के लिए 'रूटज़ोन ट्रीटमेंट' नामक एक जैविक तकनीक विकसित की गई है। इस तकनीक में आइपोमिया नामक पौधे और पानी को शुद्ध करने के लिए बैक्टीरिया कल्चर का उपयोग किया जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार देश भर में मिलने वाली सरकंडा या नरकट घास नदियों में प्रदूषण कम करने के लिए रामबाण हो सकती है। पानी साफ करने की इस तकनीक का नाम है रूट ज़ोन ट्रीटमेंट और यह केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से मान्यता प्राप्त है। इस तकनीक में सीवर के मुहाने पर एक तालाब बनाया जाता है। इसमें नीचे रोड़ी और ऊपर रेत की परत बिछाई जाती है। इसके ऊपर फ्रैगमाइटस करका यानी सरकंडे की घास लगायी जाती है। इसके बाद गंदे पानी को इस तालाब से गुजारा जाता है। सरकंडे का तना खोखला होता है, जो रुके हुए पानी को आक्सीजन देता है। ऑक्सीजन से पानी में बैक्टीरिया पनपते हैं और वही पानी साफ करते हैं।

फूलों के कचरे से अगरबत्ती निर्माण– स्वच्छ भारत और कौशल विकास एक साथ

वैज्ञानिकों का मानना है कि इससे सीवर से होने वाला प्रदूषण काफी कम हो जाएगा। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और दिल्ली से होकर बहने वाली यमुना का दिल्ली से होकर गुजरने वाला 22 किलोमीटर हिस्सा गंदे नाले में तब्दील हो चुका है। हरियाणा में प्रवेश करते ही यमुना गन्ना मिलों, पेपर मिलों और अन्य उद्योगों के कारण प्रदूषित हो जाती है। उसके किनारे बसे शहरों का सीवर भी नदी को बहुत प्रदूषित कर देता है। इस इलाके में भूजल, मिट्टी, सब्जियां और अन्य फसलें भारी धातुओं और जहरीले रसायनों की मार झेल रही हैं। रूट ज़ोन ट्रीटमेंट को आम भाषा में सरकंडे की झाड़ियों से पानी शुद्ध करना कहा जाता है। जो सरकंडा कलम बनाने से लेकर छप्पर डालने तक में काम आता रहा है, उसमें पानी साफ करने की भी अद्भुत क्षमता है। हिमाचल की एक सीमेंट फैक्ट्री में इसकी मदद से पानी को साफ किया जा रहा है। दिल्ली विकास प्राधिकरण दिल्ली की हरियाली बढ़ाने और यमुना में गिरने वाले गंदे नालों को प्रदूषणमुक्त करने के लिए भारतीय वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून की मदद ले रहा है।

सूखे फूलों से अगरबत्ती निर्माण 'मिशन एरोमा'

पूजा स्थलों, विवाह आदि आयोजनों में बड़ी मात्रा में फूलों का इस्तेमाल होता है। लखनऊ स्थित केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान (सीमैप) के वैज्ञानिकों ने मिशन एरोमा के अंतर्गत फूलों की सुगन्धित पंखुड़ियों से अगरबत्ती निर्माण पर सफल तकनीक विकसित की है। सीमैप द्वारा आयोजित कार्यशालाओं में आज हजारों युवा एवं महिलाएं सूखे एवं उपयोग में आ चुके फूलों से अगरबत्ती निर्माण की तकनीक पर प्रशिक्षण ले रहे हैं। देश में लगभग 2500 करोड़ प्रतिवर्ष का अगरबत्ती का व्यापार हो रहा है। वर्तमान में सुगंधित अगरबत्ती और धूपबत्ती की मांग लगातार बढ़ रही है। सीमैप के वैज्ञानिकों ने पूजा में अर्पित फूलों की रिसाइक्लिंग से न केवल रोजगार के साधन पैदा किए हैं बल्कि पर्यावरण प्रदूषण को रोकते हुए स्वच्छता अभियान में भी अपना योगदान दिया है। आज सीमैप की प्रशिक्षण कार्यशालाओं में उपयोग में आ चुके फूलों के पाउडर से अगरबत्ती व सुगंधित कोन निर्माण की विधि सिखाई जा रही है व अगरबत्तियों की परफ्यूमिंग, पैकेजिंग व मार्केटिंग आदि की भी जानकारी दी जा रही है।

इस प्रकार आज भारतीय वैज्ञानिक, अभियंता और शोधकर्ता कचरे से समृद्धि की दिशा में नई तकनीकों का विकास और संचालन कर रहे हैं जो स्वच्छ भारत की परिकल्पना को दिशा दे रहे हैं।

(लेखक विज्ञान संचारक हैं एवं विज्ञान प्रसार (विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार) में वैज्ञानिक ई एवं प्रमुख, विज्ञान फिल्म एकांश के पद पर कार्यरत हैं।)
ईमेल : nimish2047@gmail.com